

# राष्ट्रीय सहारा

Date: 22-07-16

## अत्याचार के पहलू

अनिल चमड़िया

जनीतिक-सामाजिक ढांचे को यथावत बनाए रखने का एक सबसे कारगर तरीका यह है कि प्रतीकों को अपने अनुकूल बनाने के लिए अपने अधीन कर लेना चाहिए। मसलन किसी मंदिर में एक दलित को पुजारी बनाकर मंदिर की पूरी व्यवस्था को बनाए रखा जा सकता है और मंदिर प्रवेश आंदोलन की ताकत को मंदिर को सुदृढ़ करने की ताकत में तब्दील किया जा सकता है। लेकिन उस मानसिकता का क्या होगा, जो लंबे अभ्यास में दलित विरोधी रूप में तैयार हुई है और उसके बने रहने के राजनीतिक-सामाजिक आधार यथावत बने रहते हैं? आखिर क्यों भारतीय जनता पार्टी और राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के नेताओं को दलितों के साथ बैठकर खाना खाने की जरूरत होती है और दलितों के बीच सबसे बड़े नायक समझे जाने वाले डॉ. भीम राव अम्बेडकर के प्रति अपनी पक्षधरता जाहिर करने के लिए विशेष प्रदर्शन करना पड़ता है। आखिर वह कौन-सी मानसिकता है, जो मायावती को एक स्त्री और दलित दोनों ही रूप में एक साथ गाली देने की साक्षरता हासिल कर रखी है? नरेन्द्र मोदी को भी पिछड़ों के एक प्रतीक के रूप में देश का नेतृत्व करने का माहौल बनाया गया। लेकिन कभी मधु मिश्रा तो कभी दयाशंकर सिंह उन प्रयासों की हवा निकाल देते हैं? गुजरात में भाजपा के बीस वर्षों के शासन के बीच गाय के बहाने दलित उत्पीड़न के एक नए मॉडल का वीडियो तैयार हो जाता है ताकि जिसे 2002 के मॉडल की तरह पूरी दुनिया में प्रचारित किया जा सके। उस वीडियो में यह दिखाया गया है कि गाय के बहाने बनने वाली निजी सेना के सदस्य दलितों को सरेआम बांधकर पीट रहे हैं। यह दिखता है कि भारतीय जनता पार्टी दलितों के प्रतीकों को अपने अनुसार ढालकर महज अपनी सत्ता के लिए इस्तेमाल

करना चाहती है। इसीलिए वह उन्हें राजनीतिक-सामाजिक संरचना को बदलने के लिए प्रेरणा-स्रोत के रूप में इस्तेमाल कर ही नहीं पाती है। उसके सामाजिक आधार की संरचना ही ऐतिहासिक रूप से ऐसी है। नरेन्द्र मोदी की सरकार के कार्यकाल में उनके मंत्रियों और नेताओं द्वारा दलितों, स्त्रियों व गैर हिंदुओं के खिलाफ टिप्पणियों पर ध्यान दें तो लगता है कि उन सामाजिक वर्गों को बस एक-दूसरे के खिलाफ खड़ा करके अपनी तात्कालिक राजनीतिक जरूरतों को पूरा करना ही लक्ष्य है। यह भी दिखता है कि भारतीय जनता पार्टी में स्त्री, दलित और गैर हिंदू विरोधी मानसिकता के खिलाफ लड़ने की कोई विचारधारा नहीं है, बल्कि उनके बीच से किसी को दलित विरोधी तो किसी को स्त्री विरोधी तो किसी को मुस्लिम विरोधी अभियान के लिए तैनात किया गया है और जब कभी उनके अभियानों पर आपत्ति होती है तो उसे व्यक्तिगत करार दे दिया जाता है। दरअसल, चुनाव के लिए जाति समूहों के बीच जोड़-तोड़ करके वोटों का जुगाड़ करना एक अलग विधा है तो सामाजिक और राजनीतिक परिवर्तन एक ठोस वैचारिक योजना की जरूरत जाहिर करता है। राजनीतिक सत्ता पर पूरी सामाजिक-आर्थिक संरचना हावी रहती है। इसीलिए राजनीतिक सत्ता सामाजिक और आर्थिक संरचना के बीच तैयार हुई मानसिकता को बदलती नहीं है बल्कि उसे आक्रामकता के लिए ताकत मुहैया कराती है। नरेन्द्र मोदी की सरकार के आने के बाद गाय के बहाने गुजरात में उना की घटना हो या दादरी में अखलाक की या झारखंड में पेड़ से लटका देने की घटना-इनमें आक्रामकता इसीलिए दिखती है। यह देखें कि भाजपा का कोई नेता दलित की तुलना कुत्ते से करता है तो कोई मायावती को दलित और स्त्री दोनों ही रूपों में एक साथ गाली देने का साहस कर लेता है। भारतीय जनता पार्टी और उसकी सरकार ने दलितों को दो स्तरों पर अपना वोट बैंक बनाने की कोशिश की है। एक तो दलित जाति समूह के भीतर जातिगत भावना को बढ़ावा देना। चुनिंदा दलित जातियों की अस्मिता और संस्कृति को हिंदुत्व के प्रतीकों से जोड़कर अपनी ओर आकर्षित करना और दूसरी तरफ दलितों के राजनीतिक-बौद्धिक प्रतीकों को अपने अनुकूल करने की योजना पर जोर देना है। लेकिन यह सामाजिक इंजीनियरिंग तात्कालिक रूप से भले ही कामयाब हो सकती है; दूरगामी तौर पर दलितों की सामाजिक और आर्थिक संरचना में आमूल परिवर्तन घटित नहीं कर सकती है। दरअसल, भाजपा के भीतर सबसे बड़ा अंतर्विरोध यह है कि वह दलितों का हिंदुत्वकरण करना चाहती है और हिंदुत्वकरण के लिए गैर हिंदुओं के खिलाफ आक्रामकता को एक औजार के रूप में विकसित करना चाहती है। मगर उसके नियंत्रणमें यह नहीं है कि वह उस

आक्रामकता को दलितों और स्त्रियों के खिलाफ भी इस्तेमाल होने से रोक सके। यदि गुजरात में सांप्रदायिक हमले के लिए एक आक्रामक विचारधारा तैयार होती है तो उस विचारधारा की फौज को दलितों के खिलाफ भी उसका इस्तेमाल करने से हिचक नहीं होगी। यदि जवाहरलाल नेहरू विविद्यालय की लड़कियों को वेश्या कहने का साहस जिस जमात में हो, उस जमात से मायावती को भी गाली नहीं निकाले जाने की उम्मीद नहीं की जा सकती है। दरअसल भारतीय जनता पार्टी के भीतर सामाजिक वगरे के खिलाफ जो प्रवृत्तियां दिखाई दे रही हैं, वह उसकी वास्तविकता है और जो सरकार की तरफ से कार्यक्रमों के रूप में प्रतीकात्मक स्तर पर दलितों के वोट के लिए जो प्रयास किए जा रहे हैं, उसका लोकतंत्र में विज्ञापन की तरह की भूमिका होती है। देश स्तर पर एक-के-बाद एक घटनाओं में दलित उत्पीड़न और सांप्रदायिक हमले अलग-अलग दिखने के बजाय एक रूप में दिखने लगे हैं। प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने रोहित वेमुला की मौत की घटना के बाद लखनऊ के डॉ. अम्बेडकर संस्थान में दुख व्यक्त किया था। पर उनके शासन के अधीन रहे गुजरात में ही दलित उत्पीड़न दिखता है तो इस अंतर्विरोध को समझा जा सकता है। दलित उत्पीड़न घटना नहीं बल्कि विचारधारा है, एक मानसिकता है। भाजपा किसी भी सांप्रदायिक हमले और दलित विरोधी हमले के बाद अपनी सफाई में इस बात पर जोर देती है कि कांग्रेस राज की तुलना में उसके शासनकाल में दलित उत्पीड़न और सांप्रदायिक हमले कम हुए हैं। हालांकि मध्य प्रदेश व राजस्थान के आंकड़े इसकी तसदीक नहीं करते पर इस तरह से फर्क का दावा करने से सरकार की छवि को लेकर जरूर भ्रम हो सकता है।

---



## दैनिक जागरण

Date: 23-07-16

### विभाजित समाज का सच

संविधान प्रवर्तन के 67 साल बाद भी 'हम भारत के लोग' का अता पता नहीं है। हम जाति और पंथ भेद में विभाजित समाज हैं।

कथन और कर्म का अंतर्विरोध पाखंड है। संविधान की उद्देशिका पठनीय है। उद्देशिका के अनुसार 'हम भारत के लोगों ने दृढ़ संकल्प होकर संविधान को अंगीकृत अधिनियमित और आत्मार्पित किया है।' लेकिन संविधान प्रवर्तन के 67 साल बाद भी 'हम भारत के लोग' का अता पता नहीं है। हम जाति और पंथ भेद में विभाजित समाज हैं। भारत अपने लोकतंत्र और वैश्विक दृष्टि के चलते अंतरराष्ट्रीय चर्चा में है। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी के नेतृत्व में देश की प्रतिष्ठा बढ़ी है बावजूद इसके अनुसूचित जातियों के प्रति बंधुत्व भाव नदारद है। जातिगत भेदभाव और अपमान की घटनाएं हैं। दलित उत्पीड़न और हिंसा की वारदातों से भारत की छवि खराब हो रही है। राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग की रिपोर्ट के अनुसार प्रत्येक 18 मिनट में दलितों के विरुद्ध एक अपराध हो जाता है। नेशनल क्राइम रिकार्ड ब्यूरो के अनुसार 2013 में 39408 व 2014 में 47664 घटनाएं हुईं। गुजरात की ताजी घटना को लेकर संसद में हंगामा हुआ है। दलित उत्पीड़न की अनेक घटनाओं पर संसद पहले भी उबाल में आई है, लेकिन राज्यों की सतर्कता और समाज की मानसिकता में परिवर्तन नहीं आए।

गुजरात की घटना में कथित गोरक्षकों ने गोवध की शंका में दलितों को पीटा। उत्तर प्रदेश में भी गोवध के विरुद्ध एक हत्या हुई थी। गोवध निषेध पर 24 राज्यों में कानून हैं। ऐसी आशंका या गोवध की वास्तविक घटना पर पुलिस को सूचना देने की आवश्यकता होती है। बेशक भारतीय परंपरा में गाय अबध्य है, लेकिन कानून तोड़ना कहां का न्याय या धर्म है? हम संविधान और संसद व विधानमंडल के कानूनों की मर्यादा नहीं तोड़ सकते। कानून तोड़ना कोई आदर्श पौरुष पराक्रम नहीं है। इससे सामाजिक सद्भाव को आग लगती है और राष्ट्र राज्य अपने मूल उद्देश्यों पर काम नहीं कर पाता। ऐसे भेदभाव और हिंसा के चलते व्यापक राष्ट्रीय क्षति हुई है। अपने ही रक्त संबंधी दलितों को धर्मांतरण की विवशता भी महसूस हुई है। भारत का हरेक नागरिक राष्ट्र का अविभाज्य अंग है। सबमें प्रतिभा है। श्रम कर्म व्यक्तित्व को आकर्षक बनाते हैं। धन साधन और ज्ञानार्जन का आदर है ही। राजनीतिक पद प्रतिष्ठा में चमक के साथ ठसक भी है। सभी लब्धियां मनुष्य के निजी श्रम व सामाजिक अनुकंपा का फल हैं, लेकिन जाति सबसे अलग, महत्वपूर्ण तत्व है। यह मनुष्य के श्रम का पुरस्कार नहीं। किसी सुविचारित योजना का भाग नहीं। इसकी सदस्यता ऐच्छिक नहीं। जन्म के साथ मिली जाति की सदस्यता से त्यागपत्र संभव नहीं। सरासर जबर्दस्ती की यह संस्था राष्ट्रीय एकता में बाधक है। सांस्कृतिक एकता की शत्रु है। सामान्य झगड़े भी जाति अस्मिता के कारण बड़ा रूप लेते हैं। जाति अमंगलदायी है। जाति कृत्रिम है और नितांत अवैज्ञानिक। राजनीति में इसका दुरुपयोग जारी है। केरल की दलित उत्पीड़न की घटना में कांग्रेस और वामदल मौन रहे और बिहार की घटनाओं पर भी। यूपी की घटनाओं पर बसपा, भाजपा मुखर रहीं। हरियाणा, मध्य प्रदेश और गुजरात की घटनाओं पर भी सुविधानुसार ही प्रतिक्रियाएं आईं। राहुल गांधी और दिल्ली के मुख्यमंत्री ने गुजरात का कार्यक्रम बनाया है। जाति को वोट बैंक बनाने वाले दल जाति का लाभ उठाते हैं। लेकिन भाजपा ने मायावती के विरुद्ध उप्र के एक पदाधिकारी की टिप्पणी पर तत्काल कार्रवाई की है। भाजपा की सोच स्पष्ट है। अन्य दल जाति भेद की सामंती सोच के विरुद्ध अभियान नहीं चलाते।

समाज में भौतिक परिवर्तन लाना आसान है। रासायनिक परिवर्तन लाना श्रमसाध्य है। सत्ताबदल या आर्थिक विकास दर में वृद्धि भौतिक परिवर्तन हैं, लेकिन समाज के प्रत्येक व्यक्ति के चित्त में समता समरसता और बंधुत्व का भाव रासायनिक परिवर्तन है। महात्मा

गांधी, डॉ. अंबेडकर, डॉ. हेडगेवार और डॉ. लोहिया आदि महानुभाव समाज में रासायनिक परिवर्तन लाने के लिए काम कर रहे थे। जाति भेद समाज की गतिशीलता में बाधक हैं। राजव्यवस्था ने 1989 में अनुसूचित जाति, जनजाति अत्याचार निवारण कानून (दलित एक्ट) बनाया। इस कानून में हजारों मुकदमों दर्ज हुए, आज भी दर्ज हो रहे हैं, लेकिन उत्पीड़न और भेदभाव नहीं रुके। मूलभूत प्रश्न है भारतीय समाज की भेदभावपूर्ण सामंती दृष्टि। भेदभाव की समाप्ति के लिए संविधान की उद्देशिका में लिखे गए 'सामाजिक आर्थिक व राजनीतिक न्याय दिलाने' के संकल्प की भी उपेक्षा हुई है। सत्ता परिवर्तन होते रहे, हो भी रहे हैं, लेकिन सामाजिक परिवर्तन में जड़ता और स्थिरता है।

समतामूलक समाज अपरिहार्य है। ऋग्वेद में जाति विभाजन नहीं है। उत्तरवैदिक काल में एक वर्ण से दूसरे में आवागमन था। वर्ण कर्मणा थे। जन्मना बनते ही जाति हो गए। जाति शोध का विषय है। डॉ. अंबेडकर ने कोलंबिया विश्वविद्यालय, न्यूयार्क में जाति की उत्पत्ति और विस्तार पर शोध प्रस्तुत किया था। डॉ. अंबेडकर ने मनु को जाति वर्ण का जन्मदाता नहीं माना। कहते हैं, जाति धर्म का नियम मनु द्वारा प्रदत्त नहीं है और न वह ऐसा कर ही सकता था। वह आगे कहते हैं, ब्राह्मण अनेक गलतियां करने के दोषी रहे हैं-और मैं कह सकता हूँ कि वे ऐसे थे-लेकिन जाति व्यवस्था को गैर-ब्राह्मणों पर लादने की उनमें क्षमता नहीं थी। डॉ. अंबेडकर के अनुसार वर्ण के भीतर ही विवाह प्रथा लागू होने से जाति अस्तित्व में आई। यह सामाजिक विकास का परिणाम है। भारतीय सभ्यता दर्शन और संस्कृति के विकास में सभी वर्गों की भूमिका है। भारत को सांस्कृतिक राष्ट्र राज्य बनाने में हरेक वर्ग ने अपना कर्तव्य निभाया है। बावजूद इसके जाति आधारित हिंसा और भेदभाव क्यों है? दलित समुदाय भारतीय समाज का श्रमशील वर्ग है। अंग्रेजी सत्ता ने दलितों को पीड़ित करने के लिए 'क्रिमिनल ट्राइब एक्ट' बनाया था। दलित परिवार में जन्मा शिशु भी क्रिमिनल घोषित था। इस वर्ग ने बहुत दुख और संताप झेले हैं। स्वतंत्र भारत में भी 50 प्रतिशत दलित निर्धन हैं, जातीय अपमान के शिकार हैं। सामान्य जीवनयापन की सुविधाएं नहीं हैं। तमाम अपमान और कष्ट उठाकर भी वे यहां की ही संस्कृति और परंपरा में राष्ट्र निर्माण में संलग्न हैं। भारत इन्हें सम्मान देकर ही आगे बढ़ सकता है।

[ लेखक हृदयनारायण दीक्षित, उप्र विधानमंडल के पूर्व सदस्य हैं ]

# हिन्दुस्तान

तस्वकीं कोे वाहिए नया नजरिया

Date: 22-07-16

## अभद्रता का चलन

भारतीय जनता पार्टी की उत्तर प्रदेश इकाईके उपाध्यक्ष दयाशंकर सिंह की बहुजन समाज पार्टी की अध्यक्ष मायावती के खिलाफ अभद्र टिप्पणी पर जो तीव्र प्रतिक्रिया हुई है, वह स्वाभाविक है। किसी भी महिला नेता के प्रति सार्वजनिक रूप से ऐसी टिप्पणी करना किसी भी सामाजिक मर्यादा के दायरे से बाहर है। भाजपा ने दयाशंकर सिंह को तुरंत पार्टी से निकालकर नुकसान भरपायी करने की कोशिश की है।

देखना होगा कि इसका कितना असर होता है, क्योंकि उत्तर प्रदेश में चुनाव होने हैं और माहौल में काफी गहमागहमी है। मायावती उत्तर प्रदेश में दलितों की सबसे बड़ी नेता हैं और सभी दलित उनके खिलाफ अमर्यादित टिप्पणी से आहत जरूर हुए होंगे। दलितों को भारतीय समाज में अब भी बराबरी का दर्जा नहीं मिल पाया है। जातियों में बुरी तरह बंटे भारतीय समाज में दलित लगातार अत्याचार और अपमान के शिकार होते रहे हैं और यह टिप्पणी दलितों को इसी व्यवहार की कड़ी लगी होगी। ऐसे लोग भी हैं, जो खुद दलित नहीं हैं, लेकिन समाज में समता के समर्थक हैं, वे भी इससे आहत हुए हैं। इसलिए यह बात आसानी से भुला दी जाएगी, ऐसा लगता नहीं है। हालांकि यह टिप्पणी एक महिला के खिलाफ होने की वजह से ज्यादा आपत्तिजनक है, लेकिन फिलहाल सारा आक्रोश दलित मुद्दे पर ही दिख रहा है। शायद इसलिए भी कि राजनीतिक रूप से यही महत्वपूर्ण है।

भाजपा के लिए यह सोचने का विषय है कि उसका एक धड़ा ऐसा है, जिसके विचार और काम दलितों में संदेह व विरोध पैदा करते हैं। हिंदुत्व की एक खास किस्म की आक्रामक अभिव्यक्ति का शिकार समाज के सबसे पिछड़े वर्ग होते रहे हैं, चाहे वे दलित हों या

अल्पसंख्यक। चाहे हैदराबाद विश्वविद्यालय की घटनाएं हों या अभी गुजरात में ताजा अशांति हो या मायावती पर यह टिप्पणी हो, वह एक दलित विरोध की तस्वीर तैयार करती है, जिसके पक्ष में यकीनन भाजपा नहीं होगी। हिंदुत्व का सवर्णवादी पाठ समाज के बहुत सारे हिस्सों को अलग कर देता है, इसलिए उस पर नियंत्रण लगना चाहिए और संघ परिवार और भाजपा के शीर्ष नेतृत्व को ऐसा करते दिखना चाहिए।

मुद्दा यह है कि हमारी राजनीति में यह मर्यादाहीनता कैसे रुकेगी? ऐसा नहीं है कि यह किसी के खिलाफ अभद्र टिप्पणी का पहला मौका हो। ऐसा होता आया है, लेकिन अब सूचना टेक्नोलॉजी ऐसी व्यापक हो गई है कि ऐसी बातें हर जगह फैल जाती हैं। लेकिन भारतीय राजनीति में इस तरह की अभद्रता और मर्यादाहीनता बढ़ती जा रही है, खासतौर से महिला या कमजोर वर्ग के नेता इसके ज्यादा शिकार बनते हैं। दिक्कत यह है कि बड़े नेता खुद भले ही ऐसी टिप्पणियां नहीं करते हों, लेकिन अपने समर्थकों को रोकते भी नहीं हैं, जब तक कि मामला असुविधाजनक न हो जाए, जैसे कि दयाशंकर सिंह के मामले में हो गया। सोशल मीडिया निहायत अभद्र और अश्लील राजनीतिक टिप्पणियों से भरा पड़ा है, लेकिन किसी राजनेता ने अपने समर्थकों को भाषा में संयम बरतने की सलाह दी हो, ऐसा सुनने में नहीं आता। जब राजनीति में आम तौर पर अभिव्यक्ति का स्तर इतना गिरा हुआ हो, तो ऐसा एकाध कांड हो जाना कोई अजूबा नहीं है। अगर आजादी के आंदोलन और आजादी के तुरंत बाद के नेताओं के संवाद की भद्रता और गंभीरता को देखें और आज की राजनीति में भाषा के औसत स्तर को देखें, तो जमीन-आसमान का फर्क नजर आएगा। जरूरत एकाध दयाशंकर सिंह को दंडित करने की नहीं, राजनीति में संवाद का औसत स्तर सुधारने की है, जिसके लिए शीर्ष नेताओं को विशेष कोशिश करनी पड़ेगी, वरना हम अपने लोकतंत्र को बार-बार कलंकित करते रहेंगे।

---



# THE ECONOMIC TIMES

Date: 23-07-16

## Legitimate political funding holds key to stemming generation of black money

The Centre's reported move to send notices to 7 lakh individuals, spotted as having made high-value transactions without furnishing their permanent account number (PAN), serves more a political purpose than to collect more taxes or stem the generation of black money. The annual information returns, which identify potential taxpayers by examining their spending patterns, are useful to track down high net worth individuals evading taxes. However, audit trails snap when transactions reported via the tax information network lack PAN, as was the case with about 1.4 million transactions. Taxmen should make intelligent use of technology to nab evaders, rather than blunt instruments in law enforcement. This is eminently feasible if every large financial transaction is tagged with a unique identifier — PAN or Aadhaar.

About 250 million PANs have been issued, and four times as many Aadhaar numbers. Furnishing a unique identifier should be mandatory for all high-value financial transactions. Tax evasion is rife in real estate. Property registrars should require a unique identifier for both the seller and the buyer. India should adopt the Torrens system of registering land — wherein the owner's name for any plot of land is directly entered into a registry, maintained and guaranteed by the government — to check benami land deals. The unorganised sector will come under the net when the goods and services tax is adopted and IT systems get interconnected. Audit trails will make available a unified database of tax potential on direct and indirect taxes. The income-tax base must be widened, given that less than 4% of people file tax

returns; and just a few thousand admit to having incomes higher than Rs 1 crore a year. This, of course, must change.

The mother-of-all-reforms is to clean up political funding. Every political party should disclose its spending and sources of financing those expenses. These claims can be contested by other parties and watchdog bodies, with the Election Commission making the final verification. Legitimate political funding holds the key to stemming the generation of black money.

---

**Date: 23-07-16**

## **Compensatory Afforestation Fund Bill:**

### **Sense on regrowing degraded forests**

As part of the global effort to tackle climate change, India has committed to create an additional carbon sink for 2.5-3 billion tonnes of carbon dioxide equivalent via additional forest and tree cover by 2030. The Compensatory Afforestation Fund Bill is central to achieving this. Central and state agencies will spend the money, collected from project developers, to create new forests in lieu of those cleared for things like mines. Forests comprise 21.34% of India's land mass, but 43% of this cover is degraded. Degenerating degraded forests is vital, to meet the climate target

Heavily forested states find it difficult to find non-forest (revenue) land for compensatory afforestation. While the government has taken this on board, it has failed to factor in the Forest Rights Act (FRA), which gives forest dwellers heritable rights, which must be protected during regeneration of degraded forests. The Congress, which moved an amendment requiring gram sabha consent for afforestation projects on forest and revenue lands, appears to have accepted the government's assurance that this lacuna will be addressed in the Act's rules. The government must do three things. One, make it clear to the project developer that

settling all claims under FRA is a prerequisite for afforestation in degraded areas. Two, direct the tribal affairs ministry and the states to prioritise settling of community and individual claims in degraded forest areas. Three, involve scientists and local representatives in preparing and implementing afforestation projects.

These measures would bring harmony — social as well as between existing and new forests. The Compensatory Afforestation Fund Bill accords an opportunity to augment the quality of India's natural capital. It must not be squandered away.



Date: 23-07-16

## Why simultaneous elections make sense

**It will allow governments to devote four years for governance and reduce the huge economic burden of frequent elections.**

**N.M. Ghatate**

Recently Prime Minister Narendra Modi floated a very pertinent idea of having simultaneous elections for the Lok Sabha and state assemblies. If the elections to the local bodies are included there is no year without some elections taking place. This vicious circle of continuous elections needs to be broken. It affects stability and without it, there can neither be economic development nor a satisfactory law and order situation.

What is more, efficient governance is the first casualty when winning elections is the first priority of all politicians and understandably so. As a result, running an administration and attending to people's grievances take a back-seat and the bureaucracy rules the roost. In addition, because of the enforcement of the moral code of conduct during elections, the pace of economic development is hampered. If all elections are held in one particular year, it will give a clear four years to the political parties to focus on good governance.

We have a parliamentary democracy with a federal set up. This system worked fairly well with the Congress dominating the political scenario for the first two decades since Independence. But with the collapse of the Congress' dominance, there emerged strong national and regional parties, each ruling some states with substantial strength in Parliament. How can stable and efficient governance be brought about in a multi-party parliamentary system like the one that exists in India?

Fortunately, the normal duration of elected bodies is five years. Article 83 (2), which speaks about the duration, states that the Lok Sabha "unless sooner dissolved, shall continue for five years..." Same phraseology is applied for state assemblies vide Article 172. The rider "unless sooner dissolved" is an exception.

However, earlier dissolution, which breaches the principle of simultaneous elections, is brought about by several methods. First, the PM or CM advises the president or the governor, as the case may be, to prematurely dissolve the Lok Sabha or state assembly and force snap elections to gain electoral advantage. In such a case, the president or the governor should decline such advice as it denies a level-playing field to the opposition, and such a refusal is also in tune with the principle of simultaneous elections. Secondly, by passing the no-confidence motion against a government or defeating the government's confidence motion. In either case, the president/governor invites the opposition leader to form the government. If no government is formed, the president/governor dissolves the house and orders midterm elections as the last resort.

Before dealing with how such a situation can be avoided, it may be noted that often the central government has misused its powers under Article 356 by imposing the president's rule in states ruled by opposition parties and dissolving assemblies resulting in premature elections.

The Supreme Court in S.R. Bommai held that there should be floor test before the assembly is dissolved. Similarly, after the landslide victory of the Janta Party in 1977, president's rule was imposed in Congress-ruled states of Rajasthan, Punjab, Bihar, Orissa, Himachal Pradesh and Madhya Pradesh. Similarly, state governments have often taken over the administration of the local bodies and dissolved them prematurely for political reasons. The combined effect has resulted in staggered elections.

To avoid frequent elections it is necessary to have stable elected bodies. It is pertinent to note that a no-confidence motion is not mentioned in the Constitution or any law, for that matter. It finds place in Rule 198 of the Rules and Conduct of Business of the Lok Sabha, which states that 50 or more members can move a no-confidence motion. If it succeeds, the government has to resign and if no other party or parties can form the government, premature elections follow. The Law Commission of India in its report of 1999 has dealt with the problem of premature and frequent elections. It had recommended an amendment of this rule on the lines of the German Constitution, which provides that the leader of the party who wants to replace the chancellor has to move the no-confidence motion along with the confidence motion. If the motions succeed, the president appoints him as the chancellor. If such an amendment to Rule 198 is made, the Lok Sabha would avoid premature dissolution without diluting the cardinal principle of democracy, that is a government with the consent of the peoples' representatives with periodical elections. It will also be consistent with the notion of collective responsibility of the government to the House as mentioned in Article 75 (3) of the Constitution.

This proposal has several advantages. The country will always have a government which enjoys the confidence of the Lok Sabha. People will know in advance who is

going to be the next PM and avoid the uncertainty as to who will lead the government. It will help ensure Lok Sabha complete its normal term of five years, as contemplated in the Constitution. If this proposal is applied to the states and local bodies, we can have simultaneous elections.

After all, the ultimate sovereign, the people of India, having elected their representatives, have no choice but to keep quiet for five years. Why should their representative be given a choice to inflict premature and expensive elections on the country?

---